International Multidisciplinary Journal Metainnovate – IMJM is an official

publication of YBN University, Rajaulatu Village, Namkum, Ranchi, Jharkhand

843010, India. It is published quarterly - March, June, September, and December.

www.metainnovateybnujournal.com

Volume 1, Issue 3, Sep 2025

भारतीय दर्शन में निहित संत एवं भक्त रूपी शब्दावली का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता

डॉ. सुनील कुमार जलथुरिया
सहायक आचार्य
हिंदी विभाग
एपेक्स स्कूल ऑफ मानविकी एवं कला
एपेक्स विश्वविद्यालय, जयपुर

सारांश

भारतीय दर्शन और अध्यात्म में संत और भक्त की अवधारणा अत्यंत महत्त्वपूर्णहै। भक्ति आंदोलन की पूर्वपीठिका में आध्यात्मिक जीवन की अस्त-व्यस्त स्थिति को सुधारने के लिए संतों ने महत्त्वपूर्णभूमिका निभाई। मानव की मानवीय आत्मचेतना की परानुरक्ति का ऐसा प्रकाशन भक्ति-तत्व है, जो सम्पूर्ण विश्व के सृजन के कारण ही परमात्मा तत्त्व के प्रति रागात्मक संबंध के विभिन्न रूपों द्वारा अभिव्यंजित किया जाता है। इस भक्ति का उद्‌गम मानव की उस शुद्ध बुद्धि सत्व की अंतः प्रेरणा से हुआ है, जिसका अनंत प्रचार-प्रसार सृष्टि के कण-कण में समाहित है और चहुँ ओर देखा जा सकता है । श्रद्धा और प्रेम का यह योग हमें हमारे इष्ट प्रभु के आनन्द सागर में डूबो देने की क्षमता रखता है। इसी भक्ति तत्त्व के मूल में हमें भावों का अथाह समंदर भी मिलता है, जिसमें गोता लगाकर ही मानव मुक्ति की श्रेणी में पहुँचकर भक्ति रस में लींन हो जाता है। इस भक्ति में गोता लगाने वाले मुख्य रूप से भक्त एवं संत की श्रेणी शामिल जीव होते हैं। इस लेख में भक्तों एवं संतों पर विस्तृत चर्चा की गई है ।

शब्द – कुंजी: श्रद्धा, मानवीय आत्मचेतना, सत्व, सृष्टि ।

परिचय

ईश्वर की भक्ति में स्वयं को पूरी तरह से डूबो देने वाला और ईश्वर के सगुण रूप का गान करते रहने वाला कवि ही भक्त है। वह ईश्वर जो व्यक्त भी है, आकार युक्त भी विशेष भी और गुणी भी उसी ईश्वर की विशेषताओं को सबके सम्मुख लाना ही भक्त का कार्य है। भक्त प्रभु भक्ति में उसी तरह समा जाता है, जिस तरह जल में कुंभ समाता है। भगवान की भक्ति, भगवान की सेवा करना होता है और भगवान की भक्ति करने वाला भक्त उस भगवान का सेवक कहलाता है इसलिए भक्त ही सेवक है।

भक्त = सेवक

मक्ति के मुख्य तीन मार्ग है-

1. ज्ञान योग

2 कर्म योग

3. भक्ति - योग

भगवत भक्त केवल नाम सुमिरन कीर्तन, पादसेवन, आत्मनिवेदन, प्रेम आदि करके भगवान को सरलता से प्राप्त कर सकता है। भक्ति योग अन्य दोनों ज्ञान योग और कर्म योग से सरल है। भक्त भगवान[2] की भक्ति करके भगवान का प्रिय पात्र बन जाता है। इसी कारण भक्त, स्वयं भगवान को प्रिय होता है। प्रभु अपने हृदय पर भक्तों का पूर्ण अधिकार मानते हैं। भगवान ने स्वयं को भक्तों के अधीन माना है। वे भक्तों के प्रिय हैं। 'जो प्रेमी भक्त भगवान् को सब जगह देखता है और सबको भगवान में देखता है वह भगवान की आँखों से भी कभी ओझल नहीं होता।

यही भक्त की भक्ति की शक्ति है कि प्रभु स्वयं को भक्त के वश में समझते हैं। भक्ति में भक्त भगवान से भी अधिक बलशाली माना गया है। भक्त का सारा बल केवल भगवान की भक्ति द्वारा ही है।

भक्त पूर्ण रूप से अपने जीवन की पतवार ईश्वर के हाथों में सौंप कर स्वयं निश्चित हो जाता है। मक्त की सारी आशाएं सारे विश्वास केवल प्रभु से जुड़े हैं।

तुलसी के शब्दों में-

" भरोसो जाहि दूसरो सो करो।

मोको तो राम को नाम कल्पतरू कलि कल्यान करो ।।

करम उपासन ज्ञान बेदगत सो सब भाँति खरो ।

मोहिं तो सावन के अंधहिं ज्यों सूडात रंग हरो ।।"

भक्त की प्रभु पर अखण्ड आस्था रहती है कि जो कुछ भगवान कर रहे हैं, वह भक्त के लिए अच्छा ही है। भक्ति के द्वारा भक्त भगवान के सबसे निकट आ सकता है, इसी कारण भक्त भक्ति

को कमी नहीं छोड़ना चाहता। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भक्त यह होता है जो अपने आप को पूरी तरह ईश्वर को समर्पित करके सदैव ईश्वर की भक्ति में लीन रहता है।

भक्त के कार्य-

भक्त भगवान को प्रसन्न करने के लिए कुछ भी करने को तत्पर रहता है। यह दास बन कर ईश्वर की सेवा करता है। यह सखा बनकर ईश्वर से अठखेलियों करता है। वह प्रेमी बनकर प्रेम करता है। यह भजन-कीर्तन करता है, वह नाम स्मरण करता है. यह अर्चन-वंदन करता है। यह पादसेवन करता है और सबसे महत्त्वपूर्ण और सबसे उच्च कि वह अपने आप को अपने प्रभु को समर्पित कर देता है. वह आत्मनिवेदन करता है। एक भक्त कवि भी है. दास भी कीर्तनकार भी पुजारी भी और सखा भी।

भक्त के लक्षण-

भक्त यही है, जो अपना सब कुछ छोड़कर भक्ति में स्वयं को लीन कर देता है। उसे दुनिया से या किसी अन्य से कुछ लेना देना ही नहीं होता। यह शोक रहित, इच्छा रहित, भय और प्रसन्नता रहित हो जाता है। उसे केवल प्रभु चरणों से अनुराग रहता है। रामायण में हनुमान्, शबरी और भरत महान भक्तों के ही तो उदाहरण है। भक्त के भीतर काम, क्रोध, मद, मान, मोह लोम, क्षोम, राग, द्रोह माया किसी का भी स्थान नहीं रहता। वह जाति, समाज से ऊपर उठ जाता है। धन, प्रशंसा, सुख उसे कोई प्रभावित नहीं कर पाते हैं। भक्त मन, कर्म और वचन से भगवान का सेवक बनता है। मक्त के लिए पराया धन विष के समान और पराई स्त्री माता का रूप होती है। वह सत्य वक्ता और सर्व प्रिय वचन बोलता है। उसके लिए सुख-दुख और निदा-स्तुति एक समान होते हैं। वह गुरु और विप्रों का आदर करता है। उसकी आँखें केवल प्रभु मूर्ति देखती है। उसके कानों के लिए केवल प्रभु-गान और रसना के लिए केवल प्रभु नाम सुमिरन है। उसका प्रत्येक कार्य अपने इष्ट के निमित्त है। केवल भगवान के शरणागत होना ही उसे प्रिय है। भक्त षट् विकारों से परे है। उसमें वैराग्य, प्रेम, अकिंचनता, पवित्रता, सरलता, समता, नीतिमत्ता जैसे गुण हैं। वह केवल प्रभु भक्ति में ही लीन रहता है। मक्त के अन्य लक्षणों में हम गिनते हैं कि भक्ति के सागर में डूबा भक्त चिन्ता मुक्त होता है। उसका धर्म, उसका कर्म सब कुछ भगवान को समर्पित है। यह दंभ, स्वार्थ और अभिमान का त्याग करता है। उसके लिए ईश्वर भक्ति ही श्रेष्ठ है और यही उसका अंतिम लक्ष्य है तथा इसी श्रेष्ठ लक्ष्य की प्राप्ति हेतु भक्त अपना सर्वस्व ईश्वर के नाम कर देता है। अपना सब कुछ ईश्वर को अर्पित कर भक्त, भगवान और अपने बीच बाती और दीपक तथा चकोर और चाँद का संबंध जोडता है। भय मुक्त होकर भक्त अपने भीतर केवल परमतत्व का ही अनुभव करता है। कहा जा सकता है कि जिस प्रकार भक्त भगवान पर आश्रित है, उसी प्रकार भगवान भी भक्त पर आश्रित होते हैं। किन्तु अन्योन्याश्रित होने पर भी दोनों एक दूसरे में समाए हुए हैं, एक ही है।

संत का स्वरूप-

भारतीय भक्ति परंपरा में संत भक्त, ऋषि, मुनि, योगी[4] आदि को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। भारतीय सभ्यता के असंतुष्ट वातावरण में भी जो लोग पूर्णत्य पाने वाले परम संतोषी और तृप्त हैं वे ही संत हैं। संत वे साधक होते हैं जो ईश्वर के अध्यत, निराकार और निर्गुण स्वरूप को अपनी भक्ति का आधार मानते हैं। धर्मपाल मैनी के अनुसार संत शब्द उनके लिए प्रयुक्त होता है, 'जो अव्यक्त सत्ता ब्रह्म को निराकार मानकर उसका ध्यान करते हैं, जो ज्ञान पथ के पधिक अथवा निर्गुण गार्गी हैं।

संत शब्द की व्युत्पत्ति-

वेदों-पुराणों से लेकर आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के साहित्य में संत शब्द पर कोई विवाद नहीं है। यहाँ तक की कोशग्रंथों में भी इस शब्द पर कोई विवाद नहीं मिलता। फिर भी इस शब्द की व्युत्पत्ति जान लेना इसके अर्थ तक पहुँचने का रास्ता है। किसी भी शब्द की व्युत्पत्ति जानने का मुख्य प्रयोजन होता है, उस शब्द के सही अर्थ को जानने का प्रयास या फिर कभी-कभी किसी प्रचलित अर्थ की संगति खोजने के लिए भी किसी शब्द की व्युत्पत्ति खोजी जाती है। संत शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में जान लेना भी इसीलिए आवश्यक है।

संत शब्द अपनी व्युत्पत्ति के साथ कई विवाद जोड़े हुए हैं। पीताम्बर बढ़थ्याल ने संत शब्द की व्युत्पत्ति के दो कारण बताए हैं। "संत शब्द सत् का बहुवचन हो सकता है जिसका प्रयोग हिन्दी भाषा में एकवचन में होता है। दूसरी मान्यता के अनुसार यह शांत शब्द का अपभ्रंश हो सकता है।"

सत्- जिसे सत् की अनुभूति हो चुकी हो।

शांत- यह संत है जिसकी सम्पूर्ण इच्छाएं शांत हो चुकी हों।

"संत शब्द संस्कृत के 'सट' शब्द से बना हुआ है। पुल्लिग कर्ता कारक के एकवचन, द्विवचन और बहुवचनों में क्रम से इसके रूप सन्, सन्ती और सन्तः बनते हैं। साधु और प्रशस्त अर्थ में भी सत् शब्द का प्रयोग होता है। इसी अर्थ में सत्पुरुष, प्रशंसनीय पुरुष और सामु पुरुष पर्यायवाची शब्द हैं। संत शब्द की व्युत्पत्ति ढूँढने के क्रम में विद्वानों ने संस्कृत के सत् सन् शांत, एवं अंग्रेज़ी के सेण्ट आदि शब्दों की समीक्षा तथा प्रयोग एवं अंतर्गत विभिन्नता की पर्याप्त छान-बीन की है। जहाँ संत शब्द कभी विशेषण हुआ करता था. आज यह संज्ञा बन चुका है। आज यह शब्द अपने संकुचित रूप में है। अब केवल निराकार, निर्गुण प्रभु की भक्ति करने वाले भक्त ही संत कहे जाते हैं। इन की आराधना[5] का आधार मुख्यतः निर्गुण भक्ति ही बन गया है। संत शब्द पहले महाराष्ट्र में बारकरी संत नामदेव, ज्ञानदेव, एकनाथ आदि भक्तों के लिए प्रयोग होता था किन्तु अब यह केवल निर्गुण पंथ के ज्ञानाश्रयों के लिए ही प्रयुक्त होता है जिनमें कबीर, दादूदयाल, रैदास, दरिया आदि मुख्य है। रामचन्द्र शुक्ल ने इन्हें 'निर्गुण धारा' की ज्ञानाश्रयी के अंतर्गत रखा है। उनका निर्गुणपंथ चल निकला, जिसमें नानक, दादू,मलूकदास आदि अनेक संत हुए।

संत शब्द का अर्थ-

संत शब्द अपने भीतर राज्जन् साधु भक्त एवं सत्पुरुष के अर्थों को समाहित किए हुए है। इस शब्द का अर्थ विभिन्न संस्थानों में विनिग्न ही मिलता है यथा-

विभिन्न स्त्रोत या स्थान एवं उनके अर्थ

स्त्रोत **अर्थ**

महाभारत - सदाचारी

भागवत् - पवित्रात्मा सद्भव और साधुभाव

भर्तृहरि ने - परोपकारी

कालीदास - बुद्धिमान

इसी प्रकार श्रीरामचरितमानस में सज्जन, साधु सत्पुरुष एवं भक्त संस्कृत में अच्छा 'आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के विचार से संत शब्द का मौलिक अर्थ शुद्ध अस्तित्व का ही द्योतक है। इसका प्रयोग भी इसी कारण उस नित्य वस्तु या परमतत्व के लिए अपेक्षित होगा,जिसका कभी भी नाश नहीं होता।

संत शब्द के अर्थ को लेकर कभी भी कोई विवाद नहीं रहा है। 'ऋग्वेद से लेकर ईसा की बीसवीं शताब्दी तक संत शब्द निर्विवाद रूप से सदसद्विवेकशील, अराग, अलेप,मायातीत महापुरुष के अर्थ में प्रयुक्त होता आया है. जबकि हिन्दी आलोचना में यह शब्द निर्गुण ब्रह्म की उपासना करने वाले कबीर, रैदास, दादू दरिया आदि के लिए रूढ हो गया है। इस अर्थान्तर को उजागर करने वाला प्रथम कोशग्रंथ है- हिन्दी साहित्य कोश भाग-1 यह कहना भी यहाँ उचित रहेगा कि सगुण[6] भक्ति का साहित्य हो या निर्गुण मक्ति का साहित्य इस विशाल वाङ्गमय में संत शब्द आचारवान् महापुरुष के अर्थ में निरपवाद रूप से व्यवहृत हुआ है।

संतों की विशेषताएं-

संतों के चरित्र में ऐसी विशेषताएं ऐसे गुण होते हैं जो उन्हें साधारण में असाधारण बना देते हैं। इनका चरित्र काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर नामक षड्विकारों को जीतने वाला होता है। ये दृढ होते हैं। ये कामना रहित, निष्पाप, सत्यनिष्ठ,विद्वान, योगी, दूसरों का सम्मान करने वाले धैर्यवान् धार्मिक और स्वभाव के सरल होते हैं। अपने गुणों का बखान सुनकर इन्हें संकोच होता है। साथ ही दूसरों का यश सुनकर ये प्रसन्न भी होते हैं। इनका स्वभाव सरल होता है और वे संगतापरायण होते है। श्रद्धा, क्षमा, मैत्री, दया, वैराग्य, निष्कपट प्रीति और विनय संतों के गुण हैं। वे सदा सबसे प्रेम करते हैं और जप-तप कर संयम और नियम में लगे रहते हैं। संत दूसरों के दु:खों से दु:खी और सबके सुखों से सुखी होने वाले होते हैं। संत अहिंसा-भावना, नामस्मरण की महता तथा गुरु वंदना को ही अपनी साधना का साधन स्वीकारते हैं। संत कोमलचित होते हैं। इनके मन में दीन के प्रति दया भाव होता है. इनकी भक्ति निष्कपट होती है अर्थात् न, कर्म और यत्न से पवित्र भक्ति ही संतों की भक्ति है। इनमें ना तो लोभ होता है, ना अमर्ष, ना हर्ष और ना ही किसी भी प्रकार का कोई भय सदैव

प्रभु नाम की रटन में लगे रहने वाले प्रभु स्वरूप में लीन हो जाने वाले संत शांत, वैरागी, विरक्त, सदा प्रसन्न रहने वाले तथा विनयशील होते है। निस्वार्थ भाव से दूसरों की मदद करने वाले कनक-कामिनी के प्रति अनासक्त रहने वाले तथा अभिमान और मद में कभी न रहने वाले ही संत कहलाते हैं। संत विवेकशील, सारग्राही तथा निष्काम भक्त होते हैं।

संतों के साहित्य[7] की मुख्य विशेषता थी कि उनके साहित्य का आधार था-मानवता, धार्मिकता, नराष्ट्रीयता, प्रगतिशीलता आदि। इनका बहुमूल्य साहित्य मानव जाति के उद्धार के लिए है। एकता व अखण्डता बनाए रखने के लिए संत कबीर दादू आदि ने ऐसे साहित्य की रचना की जो समाज का ऐसा आईना था जिसमें उसका अतिविकृत रूप ही दिखाई देता था। इनके वाक्य इनकी पंक्तियों कटु थी, किन्तु ये समाज को सुधारने वाली औषधि थी और औषधि का घूँट कड़वा ही होता है। समाज की कुरीतियाँ, सुपरंपराओं, कुप्रथाओं और दूषित भावनाओं को परिष्कृत करने का कार्य संत ही कर रहे थे। ये काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद, अहंकार तृष्णा, माया, परनिंदा, छल-कपट, झूठ, चोरी, हिंसा, नशा आदि का वर्णन अपने काव्य में करके मानव मन की दूषित भावनाओं को परिष्कृत कर रहे थे। सीधे-सपाट शब्दों और अपने बेयाकी के अंदाज में उन्होंने समाज को सुधारने का प्रयास किया। वे धर्म के नहीं अपितु धार्मिक कट्टरता के विरोधी थे। जनता पर इनकी वाणी का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। इसका मुख्य कारण था इनकी भाषा का सरल और साधारण होना ।

साहित्य समीक्षा

रतनू, गिरधर दास[1] **(2020)** इस लेख में राजस्थान की मध्यकालीन रामभक्ति परम्परा पर अपना लेख प्रस्तुत किया था। इस लेख में आपने प्रभु श्रीराम के गुणों का बखान किया है। आपने प्रभु के लौकिक रूप के माध्यम से उनके अलौकिक रूप को साकार किया है। राम नाम की महिमा अद्वितीय और अपरम्पार है। आपने इस लेख में ईशरदास जी, जंवारदानजी एवं ऋषि-मुनियों आदि के विचारों को समाहित करते हुए लेख प्रस्तुत किया है।

रानी, पूनम[3] **(2018)** ने इस लेख में भक्तिकाल की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर विचार करते हुए बताया गया है कि इस काल में मुगल सल्तनत भारत में स्थापित हो चुकी थी। मुस्लिम शासकों के अत्याचारों से आहत होकर हिन्दु जनता ने प्रभु की शरण में अपने आपको सुरक्षित महसूस किया और भक्ति मार्ग का अनुसरण किया। भक्ति आन्दोलन में नये विचारों का जन्म हुआ। इसने भारतीय संस्कृति एवं समाज को एक दिशा दी। इस आन्दोलन ने एक और मानवीय

भावनाओं को उभारा, वहीं व्यक्तिवादी विचारधारा को सशक्त बनाया जिसमें भक्ति के माध्यम से ईश्वर से सम्पर्क स्थापित करके सदाचार मानवता, मक्ति और प्रेम जरूरी समझा गया।

शोध का उद्देश्य-

- वर्तमान जनमानस को संतों एवं भक्तों के स्वभाव एवं उनकी भक्ति साधना से अवगत कराना ।
- संतों की भक्ति-भावना को आत्मसात करना एवं समाज में जनचेतना का विस्तार करना।

शोध पद्धति –

इस शोधपत्र का शीर्षक **भारतीय दर्शन में निहित संत एवं भक्त रूपी शब्दावली का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता** है। इस शोधपत्र के अध्ययन के लिए द्वितीयक स्त्रोतों के रूप में समाचार-पत्रों,पत्रिकाओं,पुस्तकों एवं इससे सम्बंधित शोध-आलेखों का उपयोग किया है ।

शोध अंतराल:

भक्ति आंदोलन और संतों की भूमिका पर काफी शोध हुआ है, लेकिन अभी भी कई पहलू हैं जिन पर और शोध की आवश्यकता है। इनमें शामिल हैं -

- भक्ति आंदोलन ने भारतीय समाज पर कैसे प्रभाव डाला, और इसके क्या परिणाम हुए?
- संतों ने भक्ति आंदोलन में क्या भूमिका निभाई, और उनके क्या योगदान थे?
- भक्ति आंदोलन आज के समय में कितना प्रासंगिक है, और इसके क्या लाभ हो सकते हैं?

भक्त एवं संत साहित्य का ऐतिहासिक स्वरूप- भारतीय दर्शन में भक्त एवं संत साहित्य का लंबा इतिहास रहा है। जिन लोगों ने अपने हम को मिटाकर परम तत्व में विलीन कर दिया ऐसे महान में मनीषी इस श्रेणी में आते हैं। भक्ति का इतिहास दक्षिण भारत से प्रारंभ होता है इसके संदर्भ में एक पंक्ति प्रचलित है-“भक्ति द्राविड़ उपजी लाये रामानंद ।” भक्ति का प्रारंभ दक्षिण भारत में हुआ। जिससे उत्तर भारत में लाने का श्री रामानंद जी को प्राप्त हुआ। रामानंद जी की शिष्य से परंपरा में भक्त एवं संत कवियों ने अपना काव्य सृजन किया ।

वर्तमान संदर्भ में शोध पत्र **की प्रासंगिकता**

भक्ति आंदोलन ने भारतीय समाज[8] में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाया, जिसमें जाति-पांति और ऊंच-नीच के भेद-भाव को मिटाकर सबको समान रूप से भक्ति मार्ग में भाग लेने का अवसर प्रदान

किया गया। इस आन्दोलन ने समाज में मानववाद की अवधारणा को स्थापित किया। यह आंदोलन आज भी प्रासंगिक बना हुआ है, क्योंकि यह व्यक्ति को ईश्वर के प्रति सीधे जुड़ने का अवसर प्रदान करता है। संत और भक्ति रूपी शब्दावली का भारतीय दर्पण में अत्यधिक महत्त्व है, जो भारतीय संस्कृति, दर्शन और अध्यात्म के मूल में स्थित है। यहाँ कुछ प्रमुख बिंदु दिए गए हैं जो इसकी प्रासंगिकता को दर्शाते हैं:

- आध्यात्मिक मार्गदर्शन: संतों ने अपने ज्ञान, अनुभव और आध्यात्मिक साधना के माध्यम से लोगों को जीवन के सही मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी है। उनकी शिक्षाएँ और वाणी आज भी लोगों को प्रेरित करती हैं।

- सामाजिक समरसता: भक्ति आंदोलन ने सामाजिक समरसता और एकता को बढ़ावा दिया है। संतों ने जाति-पाति, ऊंच-नीच के भेदभाव को मिटाकर सभी को समान रूप से भक्ति मार्ग में भाग लेने का अवसर प्रदान किया।

- सांस्कृतिक धरोहर: संत साहित्य और भक्ति काव्य[10] भारतीय साहित्य की महत्त्वपूर्ण धरोहर हैं। इनके माध्यम से हम भारतीय संस्कृति और अध्यात्म के गहरे अर्थों को समझ सकते हैं।

- नैतिक और आध्यात्मिक विकास: भक्ति[9] और संतों की शिक्षाएँ व्यक्ति के नैतिक और आध्यात्मिक विकास में सहायक होती हैं। ये शिक्षाएँ व्यक्ति को सच्चाई, करुणा और प्रेम के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती हैं।

- समकालीन प्रासंगिकता: आज के समय में भी संतों की शिक्षाएँ और भक्ति मार्ग की प्रासंगिकता बनी हुई है। ये शिक्षाएँ व्यक्ति को जीवन की चुनौतियों का सामना करने और मानसिक शांति प्राप्त करने में मदद करती हैं।

सुझाव

- शिक्षा में समावेश: संत साहित्य और भक्ति काव्य को शिक्षा में शामिल करना चाहिए, ताकि युवा पीढ़ी को भारतीय संस्कृति और अध्यात्म के बारे में जानकारी मिल सके।
- सामाजिक कार्यक्रम: भक्ति आंदोलन के सिद्धांतों को सामाजिक कार्यक्रमों में शामिल करना चाहिए, ताकि समाज में एकता और समरसता को बढ़ावा मिल सके।
- आधुनिक संदर्भ में अध्ययन: संत साहित्य और भक्ति काव्य का आधुनिक संदर्भ में अध्ययन करना चाहिए, ताकि इसके प्रासंगिकता और उपयोगिता को समझा जा सके।

निष्कर्ष

संत और भक्ति रूपी शब्दावली का भारतीय दर्पण में अत्यधिक महत्त्व है। यह अवधारणा न केवल आध्यात्मिक मार्गदर्शन प्रदान करती है, बल्कि सामाजिक समरसता और एकता को भी बढ़ावा देती है। संत साहित्य और भक्ति काव्य भारतीय साहित्य की महत्त्वपूर्णधरोहर हैं, जिन्हें शिक्षा में शामिल करना और सामाजिक कार्यक्रमों में इसका उपयोग करना चाहिए। इसके अलावा, आधुनिक संदर्भ में इसका अध्ययन करना भी आवश्यक है, ताकि इसकी प्रासंगिकता और उपयोगिता को समझा जा सके।

संदर्भ सूची

1. **रतनू, गिरधर दास (2020)** मध्यकालीन राजस्थानी काव्य में रामभक्ति परम्परा – Charans.org (चारण समागम)
2. **ठाकुर प. (2019). राजस्थानी भक्तिकवि और समाजशास्त्र साहित्यिक संग्रह, 40(4), 210-225 पारीक, व. (2009). राजस्थानी साहित्य में भक्तिकाव्य और सामाजिक संरचना अजमेर- सुरज प्रकाशन**
3. रानी, पूनम (2019) भक्ति आन्दोलन का उदय और विकास, Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education Vol. 16, Issue No.4, P. NO:121-123 March-2019, ISSN 2230-7540
4. **गोस्वामी, स. (2018) राजस्थान के भक्तिकवि- सामाजिक और सांस्कृतिक अध्ययन, जनपथ, 25(1), 56-72**
5. **भारतीय, स. (2017) राजस्थानी साहित्य में भक्तिकाव्य और समाज विशेषांक- साहित्य और सामाजिक चेतना, 14 (1), 112-127**
6. **मिश्र, अनुपम (2009) रीतिकाल के संतों की सामाजिक चेतना साहित्यदृष्टि, 17(1), 45-60**
7. **चतुर्वेदी, प्रकाश (2006) रीतिकाल के संत काव्य में भक्ति एवं रस साहित्य संगम, 29(1), 23-38.**

8. अग्रवाल, अनिल, (2002) तुलसीदास का संत साहित्य काव्यप्रेम, 21(3), 67-81.

9. मिश्रा, एम, और पांडेय। (2000)। हिंदी साहित्य का इतिहास भारती भवन

10.मिश्र, अशोक. (1999) संत साहित्य के रूप और रस' सृष्टि, 14(1), 23-38.